



International Journal of Languages, Literature and Linguistic Research (IJLLR)

(An International Peer-Reviewed (Refereed) Journal)

Website-<https://ijllr.nobleinkresearch.com/>

Email- editor@ijllr.nobleinkresearch.com

ISSN Online: 3140-0027



परिवर्तनशील स्त्री-पुरुष संबंध और पारिवारिक-सामाजिक अंतर्विरोध : बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों का आलोचनात्मक अध्ययन

Dr. Sharmila Varun *

Independent Researcher,

578, South Jatepur, Behind Police Club,

Gorakhpur, Uttar Pradesh – 273001, India

**Corresponding author E-mail: - sharmilavarun76@gmail.com*

Received: 10 August 2026, Revised: 25 August 2026, Accepted: 05 September 2026, Available Online: 30 September, 2026

<https://doi.org/10.68219/tzqels51>

सारांश

बीसवीं शताब्दी का अंतिम दशक भारतीय समाज में तीव्र सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और वैचारिक परिवर्तन का दौर रहा है। उदारीकरण, नगरीकरण, शिक्षा के विस्तार, रोजगार के बदलते अवसर तथा स्त्री की बढ़ती सामाजिक सक्रियता ने पारंपरिक स्त्री-पुरुष संबंधों और पारिवारिक संरचनाओं को गहराई से प्रभावित किया। इन परिवर्तनों का प्रभाव हिंदी उपन्यासों में भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, जहाँ स्त्री-पुरुष संबंध केवल प्रेम और विवाह तक सीमित न रहकर अस्मिता, स्वतंत्रता, सत्ता, लैंगिक समानता, भावनात्मक आकांक्षाओं और सामाजिक नैतिकता के प्रश्नों से जुड़े हैं। प्रस्तुत शोध बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में प्रकाशित चयनित हिंदी उपन्यासों का आलोचनात्मक अध्ययन करते हुए बदलते स्त्री-पुरुष संबंधों तथा उनसे उत्पन्न पारिवारिक और सामाजिक अंतर्विरोधों का विश्लेषण करता है। अध्ययन में विशेष रूप से स्त्री की आत्मचेतना, पितृसत्तात्मक संरचनाओं के प्रति प्रतिरोध, दांपत्य संबंधों में तनाव, प्रेम और विवाह की बदलती अवधारणाओं तथा परिवार और व्यक्ति के बीच उत्पन्न संघर्षों को केंद्र में रखा गया है। साथ ही, यह शोध आधुनिकता और परंपरा के द्वंद्व तथा बदलती सामाजिक परिस्थितियों के संदर्भ में पारिवारिक संबंधों के पुनर्गठन को भी रेखांकित करता है। चयनित उपन्यासों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि इस दौर का हिंदी उपन्यास स्त्री-पुरुष संबंधों को स्थिर सामाजिक संस्था के रूप में स्वीकार करने के बजाय उन्हें परिवर्तनशील सामाजिक यथार्थ, व्यक्तिगत आकांक्षाओं और लैंगिक सत्ता-संबंधों के संदर्भ में देखने की नई दृष्टि विकसित करता है। इस प्रकार, अंतिम दशक के हिंदी उपन्यास तत्कालीन भारतीय समाज में हो रहे व्यापक परिवर्तन और उसके अंतर्विरोधों के महत्वपूर्ण साहित्यिक दस्तावेज के रूप में सामने आते हैं।

प्रमुख शब्द: स्त्री-पुरुष संबंध, हिंदी उपन्यास, पारिवारिक अंतर्विरोध, सामाजिक परिवर्तन, स्त्री अस्मिता, पितृसत्ता, लैंगिक संबंध, आधुनिकता, परंपरा, दांपत्य संबंध, स्त्री चेतना, सामाजिक यथार्थ

1. प्रस्तावना

बीसवीं शताब्दी का अंतिम दशक भारतीय समाज के लिए व्यापक सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और वैचारिक परिवर्तन का काल रहा है। 1990 के दशक में भारतीय समाज में आर्थिक उदारीकरण, वैश्वीकरण, नगरीकरण, शिक्षा के प्रसार, रोजगार के नए अवसरों और संचार माध्यमों के विस्तार ने व्यक्ति के जीवन-मूल्यों तथा सामाजिक संबंधों को प्रभावित किया। इन परिवर्तनों का प्रभाव परिवार जैसी पारंपरिक सामाजिक संस्था पर भी पड़ा। परिवार के भीतर स्त्री और पुरुष की पारंपरिक भूमिकाएँ पुनर्परिभाषित होने लगीं और व्यक्तिगत आकांक्षाओं तथा सामूहिक सामाजिक अपेक्षाओं के बीच तनाव अधिक स्पष्ट रूप से सामने आया। परिणामतः स्त्री-पुरुष संबंधों में प्रेम, विवाह, दांपत्य, स्वतंत्रता, अधिकार, जिम्मेदारी और अस्मिता जैसे प्रश्न नई संवेदनशीलता के साथ उभरने लगे [1]।

हिंदी साहित्य ने सामाजिक परिवर्तन की इन प्रक्रियाओं को निरंतर अभिव्यक्ति प्रदान की है। विशेषतः उपन्यास विधा अपने विस्तृत कथानक और बहुआयामी चरित्र-निर्माण के कारण सामाजिक जीवन के सूक्ष्म अंतर्विरोधों को अभिव्यक्त करने में सक्षम रही है। बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में स्त्री को केवल परिवार और पुरुष के संदर्भ में परिभाषित करने वाली पारंपरिक दृष्टि में परिवर्तन दिखाई देता है। स्त्री अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व, इच्छाओं, निर्णयों और अस्मिता के साथ कथा के केंद्र में उपस्थित होती है। उसके लिए विवाह अब केवल सामाजिक दायित्व नहीं, बल्कि व्यक्तिगत चयन, भावनात्मक संतुष्टि और आत्मसम्मान से जुड़ा प्रश्न भी बनता है। इसी प्रकार पुरुष पात्र भी बदलते सामाजिक परिवेश में अपनी पारंपरिक भूमिका और बदलती स्त्री चेतना के बीच नए प्रकार के तनावों का सामना करते दिखाई देते हैं [2-3]।

इस परिवर्तन का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव पारिवारिक संबंधों पर दिखाई देता है। संयुक्त परिवार से एकल परिवार की ओर बढ़ती प्रवृत्ति, पति-पत्नी के बीच बदलता शक्ति-संतुलन, आर्थिक आत्मनिर्भरता, पीढ़ियों के बीच वैचारिक अंतर तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता की आकांक्षा ने परिवार के पारंपरिक स्वरूप को चुनौती दी। हिंदी उपन्यासकारों ने इन परिवर्तनों को केवल सामाजिक समस्या के रूप में नहीं देखा, बल्कि उनके पीछे सक्रिय मानसिक, भावनात्मक और सांस्कृतिक प्रक्रियाओं को भी उद्घाटित किया। इसीलिए इस दौर के उपन्यासों में परिवार एक स्थिर और निर्विवाद संस्था के रूप में नहीं, बल्कि निरंतर परिवर्तन और अंतर्विरोध से गुजरती हुई संरचना के रूप में दिखाई देता है [4-5]।

स्त्री-पुरुष संबंधों में आया परिवर्तन केवल स्त्री की स्थिति में बदलाव तक सीमित नहीं है। यह संबंधों में सत्ता और अधिकार की संरचना, भावनात्मक अपेक्षाओं, लैंगिक भूमिकाओं और सामाजिक नैतिकता के पुनर्गठन से भी संबंधित है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था में लंबे समय तक पुरुष को परिवार का निर्णायक और स्त्री को मुख्यतः पारिवारिक दायित्वों से जुड़ी भूमिका में देखा गया। आधुनिक शिक्षा, आर्थिक आत्मनिर्भरता और सामाजिक जागरूकता ने इस व्यवस्था को प्रश्नांकित किया। परिणामस्वरूप स्त्री की स्वतंत्रता और पुरुष की पारंपरिक सत्ता के बीच उत्पन्न तनाव साहित्य में विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त हुआ [6-7]।

प्रस्तुत अध्ययन का केंद्र बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के चयनित हिंदी उपन्यास हैं। इस कालखंड का चयन इसलिए महत्वपूर्ण है कि यह भारतीय समाज में परंपरा और आधुनिकता के तीव्र अंतःसंबंध का समय था। इस दौर में सामाजिक परिवर्तन की गति ने व्यक्तिगत जीवन और पारिवारिक संरचनाओं के बीच नए प्रकार के संबंध स्थापित किए। अतः इन उपन्यासों का अध्ययन तत्कालीन सामाजिक यथार्थ को समझने के साथ-साथ हिंदी साहित्य में विकसित होती स्त्री चेतना और बदलते लैंगिक संबंधों की प्रकृति को समझने में भी सहायक है।

इस शोध का उद्देश्य चयनित हिंदी उपन्यासों में चित्रित स्त्री-पुरुष संबंधों के बदलते स्वरूप का आलोचनात्मक विश्लेषण करना तथा यह देखना है कि इन परिवर्तनों ने पारिवारिक और सामाजिक जीवन में किस प्रकार के अंतर्विरोध उत्पन्न किए। इसके साथ ही अध्ययन स्त्री की आत्मचेतना, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, पितृसत्तात्मक संरचना,

दांपत्य तनाव, पारिवारिक विघटन तथा परंपरा और आधुनिकता के द्वंद्व को भी विश्लेषण के प्रमुख आधारों के रूप में ग्रहण करता है। इस दृष्टि से प्रस्तुत शोध साहित्य को केवल सामाजिक परिवर्तन का प्रतिबिंब मानने के बजाय उसे सामाजिक अनुभवों की आलोचनात्मक व्याख्या करने वाले माध्यम के रूप में देखता है।

इस प्रकार, बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों का अध्ययन यह समझने का महत्वपूर्ण अवसर प्रदान करता है कि बदलते सामाजिक परिवेश में स्त्री और पुरुष के बीच संबंध किस प्रकार पुनर्गठित हुए और इन परिवर्तनों ने परिवार तथा समाज की पारंपरिक संरचनाओं को किस तरह प्रभावित किया। इन उपन्यासों में व्यक्त संघर्ष, आकांक्षाएँ और अंतर्विरोध उस संक्रमणशील भारतीय समाज की जटिल तस्वीर प्रस्तुत करते हैं, जिसमें व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक दायित्वों के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास करता है [8-10]।

2. बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में स्त्री-पुरुष संबंधों का बदलता स्वरूप

बीसवीं शताब्दी का अंतिम दशक भारतीय सामाजिक जीवन में तीव्र संक्रमण का काल था। आर्थिक उदारीकरण, वैश्वीकरण, नगरीकरण, शिक्षा के विस्तार तथा रोजगार के बदलते अवसरों ने व्यक्ति की सामाजिक चेतना और पारिवारिक जीवन को प्रभावित किया। इन परिवर्तनों का विशेष प्रभाव स्त्री-पुरुष संबंधों पर पड़ा। परंपरागत समाज में स्त्री-पुरुष संबंध मुख्यतः विवाह, परिवार और सामाजिक मर्यादाओं द्वारा निर्धारित होते थे, जबकि आधुनिक परिस्थितियों में व्यक्तिगत इच्छा, भावनात्मक संतुष्टि, आत्मनिर्णय और समानता के प्रश्न अधिक महत्वपूर्ण होने लगे। हिंदी उपन्यासों ने इस परिवर्तन को सामाजिक जीवन के विभिन्न स्तरों पर अभिव्यक्त किया है।

परंपरागत भारतीय परिवार व्यवस्था में स्त्री की सामाजिक भूमिका मुख्यतः पत्नी, माँ और परिवार की देखभाल करने वाली सदस्य के रूप में निर्धारित की जाती रही थी। पुरुष को परिवार का आर्थिक और निर्णयात्मक केंद्र माना जाता था। अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में इस व्यवस्था के भीतर उत्पन्न असंतोष और परिवर्तन को प्रमुखता से प्रस्तुत किया गया। स्त्री अब केवल पारिवारिक दायित्वों को स्वीकार करने वाली पात्र नहीं रह जाती, बल्कि अपने अस्तित्व, इच्छाओं और निर्णयों के प्रति सजग दिखाई देती है। उसकी शिक्षा और आर्थिक आत्मनिर्भरता उसे पारंपरिक संबंधों की समीक्षा करने की क्षमता प्रदान करती है [11]।

इस परिवर्तन का प्रभाव विवाह संस्था पर भी पड़ा। विवाह को केवल सामाजिक और पारिवारिक अनुबंध के रूप में स्वीकार करने के स्थान पर भावनात्मक सामंजस्य और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के संदर्भ में देखने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। पति-पत्नी के बीच समानता की अपेक्षा बढ़ती है, लेकिन सामाजिक संस्कारों और पारंपरिक लैंगिक भूमिकाओं के कारण यह समानता सहज रूप से स्थापित नहीं हो पाती। परिणामस्वरूप उपन्यासों में दांपत्य संबंधों के भीतर संवादहीनता, मानसिक दूरी, अधिकार-बोध, अपेक्षाओं और असंतोष जैसी स्थितियाँ दिखाई देती हैं।

प्रेम की अवधारणा में भी परिवर्तन इस दौर की महत्वपूर्ण विशेषता है। प्रेम अब केवल विवाह की पूर्वपीठिका या सामाजिक स्वीकृति प्राप्त संबंध नहीं रह जाता, बल्कि व्यक्ति की भावनात्मक और अस्तित्वगत आवश्यकताओं से जुड़ा है। स्त्री पात्र अपने प्रेम और संबंधों के बारे में निर्णय लेने की इच्छा व्यक्त करती हैं। इसके साथ ही प्रेम और सामाजिक नैतिकता के बीच संघर्ष भी उभरता है। व्यक्तिगत भावनाओं को सामाजिक प्रतिष्ठा, पारिवारिक मर्यादा और नैतिक मानदंडों से टकराते हुए दिखाया गया है। इस प्रकार प्रेम-संबंधों का चित्रण सामाजिक परिवर्तन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के बीच तनाव को सामने लाता है [12-14]।

स्त्री की आर्थिक स्वतंत्रता ने स्त्री-पुरुष संबंधों की पारंपरिक संरचना को विशेष रूप से प्रभावित किया। रोजगार प्राप्त स्त्री परिवार की आर्थिक व्यवस्था में सक्रिय भूमिका निभाने लगी और इससे उसके आत्मविश्वास तथा निर्णय लेने की क्षमता में वृद्धि हुई। किंतु आर्थिक आत्मनिर्भरता के बावजूद घरेलू जिम्मेदारियों का असमान विभाजन और पारंपरिक अपेक्षाएँ बनी रहीं। इसलिए हिंदी उपन्यासों में कामकाजी स्त्री के सामने दोहरी जिम्मेदारी

का प्रश्न दिखाई देता है—एक ओर पेशेवर जीवन की अपेक्षाएँ और दूसरी ओर परिवार की पारंपरिक जिम्मेदारियाँ। यही स्थिति अनेक पारिवारिक अंतर्विरोधों का आधार बनती है [15-16]।

इस दौर के साहित्य में पुरुष पात्रों की स्थिति भी परिवर्तनशील दिखाई देती है। स्त्री की बदलती भूमिका और बढ़ती स्वतंत्रता के कारण पुरुष की पारंपरिक पारिवारिक भूमिका पर पुनर्विचार आवश्यक हुआ। कुछ स्थितियों में पुरुष स्त्री की स्वतंत्रता और समानता को स्वीकार करता दिखाई देता है, जबकि कुछ कथानकों में पुरानी मानसिकता और नई सामाजिक वास्तविकता के बीच संघर्ष उत्पन्न होता है। इस प्रकार स्त्री-पुरुष संबंधों का संकट केवल स्त्री की मुक्ति का प्रश्न नहीं रह जाता, बल्कि दोनों की बदलती सामाजिक भूमिकाओं और पारस्परिक अपेक्षाओं का प्रश्न बन जाता है।

अंततः, अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में स्त्री-पुरुष संबंधों का बदलता स्वरूप भारतीय समाज में परंपरा और आधुनिकता के अंतःसंघर्ष को अभिव्यक्त करता है। इन संबंधों में आया परिवर्तन पूर्णतः रैखिक या संघर्षरहित नहीं है; बल्कि इसमें स्वतंत्रता और सामाजिक मर्यादा, व्यक्तिगत आकांक्षा और पारिवारिक दायित्व, समानता और पारंपरिक सत्ता-संबंधों के बीच निरंतर तनाव दिखाई देता है। यही तनाव इन उपन्यासों को उस समय के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण साहित्यिक दस्तावेज बनाता है [17-20]।

3. हिंदी उपन्यासों में स्त्री-पुरुष संबंधों की पुनर्व्याख्या

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में स्त्री-पुरुष संबंधों को देखने की दृष्टि में उल्लेखनीय परिवर्तन दिखाई देता है। पारंपरिक हिंदी उपन्यासों में जहाँ स्त्री-पुरुष संबंधों का केंद्र प्रायः विवाह, परिवार, त्याग, कर्तव्य और सामाजिक मर्यादा रहा था, वहीं अंतिम दशक के उपन्यासों में इन संबंधों को व्यक्ति की स्वतंत्र चेतना, भावनात्मक आवश्यकताओं, लैंगिक समानता और आत्मसम्मान के संदर्भ में पुनर्परिभाषित किया गया। इस परिवर्तन के पीछे भारतीय समाज में विकसित हो रही नई सामाजिक चेतना और स्त्री की बदलती स्थिति की महत्वपूर्ण भूमिका रही।

स्त्री की आत्मचेतना और स्वायत्तता

इस दौर के हिंदी उपन्यासों की स्त्री अपने अस्तित्व को केवल पत्नी, माँ, बहू या बेटा की सामाजिक भूमिकाओं तक सीमित स्वीकार नहीं करती। वह अपने व्यक्तित्व और इच्छाओं को स्वतंत्र रूप से पहचानने का प्रयास करती है। उसके सामने यह प्रश्न उभरता है कि क्या उसका जीवन केवल परिवार और सामाजिक अपेक्षाओं के अनुसार निर्धारित होना चाहिए या उसे अपने जीवन के संबंध में निर्णय लेने का अधिकार भी प्राप्त है। यही प्रश्न स्त्री पात्रों में आत्मचेतना के विकास का आधार बनता है।

स्त्री की आत्मचेतना केवल बाहरी स्वतंत्रता तक सीमित नहीं है। यह मानसिक और भावनात्मक स्वतंत्रता से भी संबंधित है। स्त्री अपने संबंधों का मूल्यांकन स्वयं करना चाहती है और उन संबंधों को स्वीकार या अस्वीकार करने की क्षमता विकसित करती है जिनमें उसे सम्मान और समानता का अनुभव नहीं होता। इस प्रक्रिया में परिवार और समाज द्वारा निर्मित स्त्री की पारंपरिक छवि प्रश्नांकित होती है।

पितृसत्तात्मक सत्ता और संबंधों का संघर्ष

स्त्री-पुरुष संबंधों की पुनर्व्याख्या में पितृसत्तात्मक व्यवस्था का प्रश्न केंद्रीय रूप से सामने आता है। पारंपरिक परिवार में निर्णय लेने की प्रमुख शक्ति पुरुष के पास होती थी और स्त्री से आज्ञाकारिता तथा समर्पण की अपेक्षा की जाती थी। अंतिम दशक के उपन्यासों में इस सत्ता-संबंध को स्वाभाविक मानने के बजाय उसके सामाजिक आधार और प्रभावों पर प्रश्न उठाया गया।

स्त्री की स्वतंत्रता की आकांक्षा और पुरुष की पारंपरिक सत्ता के बीच उत्पन्न तनाव अनेक कथानकों में दिखाई देता है। पति-पत्नी के बीच मतभेद, परिवार में निर्णय लेने के अधिकार का प्रश्न, आर्थिक स्वतंत्रता और व्यक्तिगत

जीवन से जुड़े निर्णय इस संघर्ष के विभिन्न रूप प्रस्तुत करते हैं। यहाँ संघर्ष केवल दो व्यक्तियों के बीच नहीं होता, बल्कि उसके पीछे सामाजिक संरचनाओं और स्थापित लैंगिक भूमिकाओं का प्रभाव भी सक्रिय रहता है।

प्रेम और विवाह की बदलती अवधारणा

इस कालखंड के उपन्यासों में प्रेम और विवाह के संबंध को भी नए संदर्भ में देखा गया है। विवाह को केवल सामाजिक संस्था के रूप में स्वीकार करने के स्थान पर उसमें भावनात्मक समानता, पारस्परिक सम्मान और व्यक्तिगत संतुष्टि की अपेक्षा दिखाई देती है। प्रेम संबंधों में व्यक्ति की इच्छा और चुनाव को महत्व मिलने लगता है।

हालाँकि सामाजिक वास्तविकता में पारंपरिक नैतिक मूल्य पूरी तरह समाप्त नहीं होते। व्यक्तिगत इच्छा और सामाजिक स्वीकृति के बीच उत्पन्न द्वंद्व पात्रों के जीवन में तनाव पैदा करता है। विशेष रूप से स्त्री के प्रेम और यौनिकता से संबंधित निर्णयों को सामाजिक नैतिकता अधिक कठोरता से नियंत्रित करती है। इसलिए उपन्यासों में प्रेम की स्वतंत्रता के साथ सामाजिक नियंत्रण का प्रश्न भी समान रूप से उपस्थित रहता है।

दांपत्य संबंधों में समानता की आकांक्षा

दांपत्य संबंधों के संदर्भ में इस दौर के उपन्यास एक महत्वपूर्ण परिवर्तन को रेखांकित करते हैं। पत्नी और पति के संबंधों में केवल कर्तव्य और सामाजिक भूमिका के स्थान पर संवाद, मित्रता, भावनात्मक सहयोग और समानता की अपेक्षा दिखाई देती है। स्त्री अपने पति से केवल संरक्षण नहीं, बल्कि सम्मान और साझेदारी की अपेक्षा करती है।

इसके बावजूद पारिवारिक जीवन में पुराने मूल्य पूरी तरह समाप्त नहीं होते। कामकाजी स्त्री से भी घर और परिवार की पारंपरिक जिम्मेदारियों को निभाने की अपेक्षा बनी रहती है। इस प्रकार आर्थिक स्वतंत्रता और घरेलू दायित्वों के बीच उत्पन्न तनाव दांपत्य संबंधों को जटिल बनाता है। उपन्यास इस जटिलता को स्त्री के मानसिक संघर्ष और पारिवारिक अंतर्विरोधों के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं।

पुरुष पात्रों की बदलती भूमिका

स्त्री की बदलती सामाजिक स्थिति के साथ पुरुष पात्रों की भूमिका भी पुनर्विचार का विषय बनती है। पुरुष अब केवल परिवार के आर्थिक संरक्षक या अंतिम निर्णयकर्ता के रूप में प्रस्तुत नहीं होता। बदलती सामाजिक परिस्थितियाँ उससे भावनात्मक सहभागिता और संबंधों में समानता की अपेक्षा भी करती हैं।

कुछ उपन्यासों में पुरुष पात्र परिवर्तन को स्वीकार करते दिखाई देते हैं, जबकि कुछ पात्र पारंपरिक पुरुष सत्ता और अधिकार-बोध से बाहर नहीं निकल पाते। इससे स्त्री-पुरुष संबंधों में संवाद, टकराव और पुनर्समायोजन की स्थितियाँ पैदा होती हैं। इस दृष्टि से पुरुष पात्रों का अध्ययन भी स्त्री विमर्श जितना ही आवश्यक हो जाता है, क्योंकि लैंगिक संबंधों में परिवर्तन दोनों पक्षों की भूमिकाओं को प्रभावित करता है।

इस प्रकार, बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में स्त्री-पुरुष संबंधों की पुनर्व्याख्या व्यक्ति की स्वतंत्रता और सामाजिक संरचना के बीच विकसित होते तनाव को सामने लाती है। स्त्री की आत्मचेतना, पितृसत्ता के प्रति प्रश्नाकुलता, विवाह और प्रेम की बदलती अवधारणाएँ तथा दांपत्य संबंधों में समानता की आकांक्षा इस पुनर्व्याख्या के प्रमुख आधार हैं। इन उपन्यासों में स्त्री-पुरुष संबंध न तो पूरी तरह पारंपरिक रहते हैं और न ही पूर्णतः आधुनिक रूप ग्रहण कर लेते हैं; वे संक्रमणशील समाज की जटिल परिस्थितियों में निरंतर पुनर्गठित होते दिखाई देते हैं।

4. पारिवारिक अंतर्विरोध और विघटित होते संबंध

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में परिवार केवल सामाजिक जीवन की आधारभूत संस्था के रूप में नहीं, बल्कि बदलती सामाजिक चेतना और पारंपरिक मूल्यों के बीच संघर्ष के प्रमुख क्षेत्र के रूप में सामने आता है। सामाजिक परिवर्तन ने परिवार की संरचना, भूमिकाओं और पारस्परिक संबंधों को प्रभावित किया।

परिणामस्वरूप परिवार के भीतर पति-पत्नी, माता-पिता और संतान तथा विभिन्न पीढ़ियों के बीच वैचारिक और भावनात्मक दूरी बढ़ती हुई दिखाई देती है। इन उपन्यासों में पारिवारिक विघटन को केवल नैतिक पतन के रूप में नहीं, बल्कि बदलती सामाजिक परिस्थितियों और व्यक्ति की बढ़ती आत्मचेतना से जुड़े जटिल अनुभव के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

परिवार की बदलती संरचना

परंपरागत संयुक्त परिवार व्यवस्था में व्यक्ति की पहचान काफी हद तक परिवार की सामूहिक पहचान से जुड़ी होती थी। परिवार के वरिष्ठ सदस्यों के निर्णय, सामाजिक प्रतिष्ठा और पारिवारिक परंपराएँ व्यक्तिगत जीवन को प्रभावित करती थीं। आधुनिक जीवन-स्थितियों में शिक्षा, रोजगार, नगरीकरण और आर्थिक गतिशीलता के कारण परिवार की संरचना में परिवर्तन आया। एकल परिवारों का विस्तार और व्यक्तिगत जीवन की बढ़ती प्राथमिकता ने पारिवारिक संबंधों के स्वरूप को प्रभावित किया।

हिंदी उपन्यासों में इस परिवर्तन के परिणामस्वरूप परिवार के भीतर सामूहिकता और व्यक्तिवाद के बीच संघर्ष दिखाई देता है। नई पीढ़ी व्यक्तिगत निर्णय और स्वतंत्र जीवन को महत्व देती है, जबकि पुरानी पीढ़ी पारिवारिक परंपराओं और सामाजिक मान्यताओं को प्राथमिकता देती है। इस अंतर से उत्पन्न तनाव कई बार संवादहीनता और भावनात्मक दूरी का रूप ले लेता है।

दांपत्य जीवन के अंतर्विरोध

परिवार के भीतर सबसे महत्वपूर्ण संबंध पति-पत्नी का है और बदलती स्त्री चेतना का सीधा प्रभाव इसी संबंध पर दिखाई देता है। स्त्री की शिक्षा और आर्थिक आत्मनिर्भरता के साथ उसके भीतर समानता और सम्मान की अपेक्षा मजबूत होती है। दूसरी ओर, पुरुष और परिवार की पारंपरिक अपेक्षाएँ कई बार स्त्री से पूर्ववर्त भूमिकाओं के निर्वाह की मांग करती रहती हैं।

इस विरोधाभास के कारण दांपत्य जीवन में अनेक प्रकार के अंतर्विरोध उत्पन्न होते हैं। घरेलू कार्यों का असमान विभाजन, आर्थिक निर्णयों में भागीदारी, पेशेवर जीवन, बच्चों की जिम्मेदारी और व्यक्तिगत स्वतंत्रता जैसे प्रश्न पति-पत्नी के संबंधों को प्रभावित करते हैं। हिंदी उपन्यास इन परिस्थितियों को केवल बाहरी संघर्ष के रूप में नहीं देखते, बल्कि उनके कारण उत्पन्न मानसिक तनाव और भावनात्मक अकेलेपन को भी अभिव्यक्त करते हैं।

पीढ़ियों के बीच संघर्ष

अंतिम दशक के उपन्यासों में पारिवारिक अंतर्विरोध का एक प्रमुख आधार पीढ़ियों के बीच मूल्यगत अंतर है। पुरानी पीढ़ी के लिए परिवार, सामाजिक प्रतिष्ठा, परंपरा और सामूहिक दायित्व महत्वपूर्ण हैं, जबकि नई पीढ़ी व्यक्तिगत स्वतंत्रता, आत्मनिर्णय और अपने जीवन के चुनावों को अधिक महत्व देती है। विवाह, प्रेम, रोजगार, स्त्री की स्वतंत्रता और जीवन-शैली से जुड़े प्रश्नों पर दोनों पीढ़ियों की धारणाएँ अलग दिखाई देती हैं।

यह संघर्ष विशेष रूप से युवा स्त्री पात्रों के संदर्भ में अधिक जटिल हो जाता है। जब कोई स्त्री पारंपरिक पारिवारिक भूमिका से अलग अपने जीवन का निर्णय लेना चाहती है, तब परिवार की स्वीकृति और उसकी व्यक्तिगत इच्छा के बीच तनाव उत्पन्न होता है। इस प्रकार पीढ़ियों का संघर्ष व्यापक सामाजिक परिवर्तन का पारिवारिक स्तर पर दिखाई देने वाला रूप बन जाता है।

आर्थिक परिस्थितियाँ और पारिवारिक तनाव

आर्थिक परिवर्तन भी पारिवारिक संबंधों को प्रभावित करने वाला महत्वपूर्ण कारक है। रोजगार, आय, आर्थिक आत्मनिर्भरता और उपभोग की बढ़ती आकांक्षाएँ परिवार के भीतर शक्ति-संबंधों को बदलती हैं। विशेष रूप से जब स्त्री स्वयं आर्थिक रूप से सक्षम होती है, तब पारंपरिक आर्थिक निर्भरता पर आधारित स्त्री-पुरुष संबंधों में परिवर्तन आता है।

हालाँकि आर्थिक आत्मनिर्भरता अपने आप में पारिवारिक समानता सुनिश्चित नहीं करती। कामकाजी स्त्री से आर्थिक योगदान के साथ घरेलू जिम्मेदारियों के निर्वाह की अपेक्षा बनी रह सकती है। इस दोहरी जिम्मेदारी से उत्पन्न दबाव उसके व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन के बीच संघर्ष को बढ़ाता है। हिंदी उपन्यास इस स्थिति के माध्यम से आधुनिकता के भीतर मौजूद असमानताओं को उजागर करते हैं।

भावनात्मक दूरी और संबंधों का विघटन

परिवार के विघटन का एक महत्वपूर्ण पक्ष भावनात्मक दूरी है। एक ही परिवार में रहने वाले सदस्य भी कई बार मानसिक और भावनात्मक स्तर पर एक-दूसरे से दूर दिखाई देते हैं। संवाद की कमी, व्यक्तिगत आकांक्षाओं का दमन, पारस्परिक अविश्वास और अपेक्षाओं का असंतुलन संबंधों को कमजोर करते हैं।

इस संदर्भ में उपन्यासों में अकेलापन एक महत्वपूर्ण अनुभव के रूप में उभरता है। व्यक्ति परिवार के भीतर रहते हुए भी अपने अस्तित्व को अकेला अनुभव कर सकता है। विशेषतः स्त्री पात्रों का अकेलापन केवल व्यक्तिगत भावनात्मक समस्या नहीं, बल्कि उन सामाजिक संरचनाओं का परिणाम भी हो सकता है जिनमें उसकी इच्छाओं और निर्णयों को पर्याप्त महत्व नहीं मिलता।

अतः अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में पारिवारिक विघटन को केवल परिवार संस्था के पतन के रूप में देखना पर्याप्त नहीं है। इसके पीछे सामाजिक परिवर्तन, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, आर्थिक आत्मनिर्भरता, बदलती लैंगिक भूमिकाएँ और पीढ़ियों के बीच मूल्यगत अंतर जैसी अनेक प्रक्रियाएँ सक्रिय हैं। इन उपन्यासों में परिवार एक संक्रमणशील संस्था के रूप में सामने आता है, जहाँ पुरानी संरचनाएँ पूरी तरह समाप्त नहीं हुई हैं और नई चेतना भी अभी पूरी तरह स्थापित नहीं हुई है। इसी संक्रमण से उत्पन्न तनाव और अंतर्विरोध इस कालखंड के हिंदी उपन्यासों की महत्वपूर्ण सामाजिक-साहित्यिक विशेषता बनते हैं।

5. सामाजिक परिवर्तन और स्त्री-पुरुष संबंध

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में भारतीय समाज में आए व्यापक परिवर्तनों ने स्त्री-पुरुष संबंधों को नए सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ प्रदान किए। आर्थिक उदारीकरण, वैश्वीकरण, नगरीकरण, शिक्षा का प्रसार, महिलाओं की बढ़ती भागीदारी तथा संचार माध्यमों के विस्तार ने व्यक्ति की जीवन-दृष्टि और संबंधों की अपेक्षाओं को प्रभावित किया। हिंदी उपन्यासों ने इन परिवर्तनों को केवल बाहरी सामाजिक घटनाओं के रूप में प्रस्तुत नहीं किया, बल्कि इनके कारण व्यक्ति के निजी जीवन, पारिवारिक संबंधों और लैंगिक भूमिकाओं में उत्पन्न तनाव को भी अभिव्यक्ति दी।

शिक्षा, रोजगार और स्त्री की बदलती स्थिति

शिक्षा के विस्तार ने स्त्री की सामाजिक चेतना के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। शिक्षित स्त्री अपने अधिकारों, संभावनाओं और सामाजिक स्थिति के प्रति अधिक सजग दिखाई देती हैं। शिक्षा उसके लिए केवल ज्ञान प्राप्त करने का माध्यम नहीं, बल्कि आत्मनिर्भरता और आत्मनिर्णय की संभावनाओं का आधार भी बनती है। रोजगार के क्षेत्र में स्त्री की बढ़ती भागीदारी ने स्त्री-पुरुष संबंधों को और अधिक प्रभावित किया। आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर स्त्री पारंपरिक निर्भरता की स्थिति से बाहर आने का प्रयास करती है। इससे परिवार में निर्णय लेने की प्रक्रिया और पति-पत्नी के पारस्परिक संबंधों में परिवर्तन की संभावना उत्पन्न होती है। किंतु सामाजिक मानसिकता में परिवर्तन अपेक्षाकृत धीमा होने के कारण कामकाजी स्त्री को पेशेवर और घरेलू दोनों भूमिकाओं का निर्वाह करना पड़ता है। यही द्वंद्व हिंदी उपन्यासों में स्त्री के मानसिक तनाव और पारिवारिक संघर्ष के रूप में सामने आता है।

नगरीकरण और बदलती जीवन-दृष्टि

नगरीकरण ने पारिवारिक संरचना और व्यक्तिगत जीवन को प्रभावित किया। शहरों में रोजगार और शिक्षा के नए अवसरों ने युवा पीढ़ी को पारंपरिक सामाजिक नियंत्रणों से अपेक्षाकृत अलग जीवन जीने की संभावनाएँ प्रदान कीं। महानगरीय जीवन में व्यक्ति की पहचान परिवार की सामूहिक पहचान से अलग विकसित होने लगी।

हिंदी उपन्यासों में शहर अक्सर परिवर्तन और स्वतंत्रता की संभावना के साथ-साथ अकेलेपन और संबंध-विच्छेद का भी प्रतीक बनता है। महानगरीय जीवन व्यक्ति को नए संबंध बनाने की स्वतंत्रता देता है, लेकिन साथ ही पारंपरिक सामुदायिक संबंधों की निकटता को कमजोर भी कर सकता है। इस विरोधाभास का प्रभाव स्त्री-पुरुष संबंधों पर विशेष रूप से दिखाई देता है।

वैश्वीकरण और उपभोक्तावादी संस्कृति

1990 के दशक के बाद भारतीय समाज में वैश्विक आर्थिक और सांस्कृतिक प्रभाव अधिक स्पष्ट हुए। उपभोक्तावादी संस्कृति ने जीवन-शैली, आकांक्षाओं और सामाजिक प्रतिष्ठा की धारणाओं को प्रभावित किया। व्यक्ति के लिए आर्थिक सफलता, व्यक्तिगत सुविधा और जीवन की गुणवत्ता जैसे प्रश्न अधिक महत्वपूर्ण होते गए।

इसका प्रभाव प्रेम और विवाह की अवधारणाओं पर भी पड़ा। संबंधों में भावनात्मक संतुष्टि और व्यक्तिगत चुनाव का महत्व बढ़ा, लेकिन दूसरी ओर आर्थिक स्थिति और सामाजिक प्रतिष्ठा संबंधों के मूल्यांकन को प्रभावित करने लगे। हिंदी उपन्यास इस द्वंद्व को व्यक्ति की इच्छाओं और सामाजिक अपेक्षाओं के बीच उत्पन्न संघर्ष के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

सामाजिक नैतिकता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता

इस कालखंड के साहित्य में व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक नैतिकता के बीच संघर्ष एक प्रमुख विषय के रूप में उभरता है। आधुनिक जीवन व्यक्ति को अपने संबंधों और जीवन-निर्णयों के बारे में स्वतंत्रता की आकांक्षा देता है, लेकिन समाज अभी भी अनेक पारंपरिक नैतिक मानदंडों को बनाए रखता है।

यह संघर्ष स्त्री के संदर्भ में अधिक जटिल हो जाता है। पुरुष के लिए जिन व्यवहारों को सामाजिक रूप से स्वीकार कर लिया जाता है, वही व्यवहार स्त्री के लिए कई बार नैतिक प्रश्न बना दिए जाते हैं। इस दोहरे मानदंड को हिंदी उपन्यासों ने स्त्री पात्रों के अनुभवों के माध्यम से प्रश्नांकित किया। प्रेम, विवाह, तलाक, पुनर्विवाह और व्यक्तिगत निर्णयों से जुड़े प्रसंग इसी सामाजिक असमानता को उजागर करते हैं।

परंपरा और आधुनिकता का द्वंद्व

अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में परंपरा और आधुनिकता एक-दूसरे के पूर्ण विरोधी रूप में उपस्थित नहीं हैं। अनेक पात्रों के जीवन में दोनों के बीच निरंतर संवाद और संघर्ष दिखाई देता है। व्यक्ति आधुनिक जीवन की स्वतंत्रता को स्वीकार करना चाहता है, लेकिन उसकी सामाजिक चेतना पारिवारिक और सांस्कृतिक परंपराओं से पूरी तरह अलग नहीं हो पाती।

इसी कारण स्त्री-पुरुष संबंधों में परिवर्तन भी क्रमिक और जटिल दिखाई देता है। स्त्री समानता की मांग करती है, लेकिन परिवार और सामाजिक दायित्वों से उसका संबंध बना रहता है। पुरुष भी बदलते सामाजिक परिवेश के साथ अपनी भूमिका को पुनर्गठित करने की स्थिति में आता है। परिणामस्वरूप संबंधों में संघर्ष के साथ समझौते, संवाद और नए संतुलन की संभावनाएँ भी दिखाई देती हैं।

इस प्रकार, बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में सामाजिक परिवर्तन और स्त्री-पुरुष संबंध परस्पर गहराई से जुड़े हुए हैं। शिक्षा, रोजगार, नगरीकरण और वैश्वीकरण ने स्त्री की सामाजिक स्थिति तथा व्यक्तिगत आकांक्षाओं को प्रभावित किया, जबकि बदलती सामाजिक नैतिकता ने पारंपरिक संबंधों की संरचना पर प्रश्न खड़े किए। इन उपन्यासों का महत्व इस बात में है कि वे परिवर्तन को एक सरल मुक्ति-कथा के रूप में प्रस्तुत नहीं करते, बल्कि उसके भीतर मौजूद सामाजिक असमानताओं, पारिवारिक तनावों और वैचारिक अंतर्विरोधों को भी सामने लाते हैं।

6. चयनित हिंदी उपन्यासों का आलोचनात्मक अध्ययन

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में हिंदी उपन्यासों ने स्त्री-पुरुष संबंधों तथा पारिवारिक-सामाजिक संरचनाओं में हो रहे परिवर्तनों को विविध रूपों में अभिव्यक्त किया। इस दौर के उपन्यासों में स्त्री पात्रों की सामाजिक स्थिति, व्यक्तिगत आकांक्षाएँ, प्रेम और विवाह संबंधी दृष्टिकोण तथा पारिवारिक दायित्वों के बीच उत्पन्न संघर्ष विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। साथ ही, पुरुष पात्रों के माध्यम से पितृसत्तात्मक व्यवस्था, पारंपरिक पुरुष-भूमिका और बदलती सामाजिक अपेक्षाओं के बीच उत्पन्न तनाव को भी अभिव्यक्ति मिली है।

चयनित उपन्यासों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि स्त्री-पुरुष संबंधों को केवल निजी संबंध के रूप में नहीं देखा गया है। इनके भीतर वर्ग, परिवार, आर्थिक स्थिति, सामाजिक प्रतिष्ठा, नैतिक मान्यताओं और लैंगिक सत्ता जैसे अनेक कारक सक्रिय हैं। इसलिए इन संबंधों का विश्लेषण व्यापक सामाजिक संदर्भ से अलग करके संभव नहीं है।

स्त्री अस्मिता और आत्मनिर्णय

इस दौर के उपन्यासों की स्त्री अपने अस्तित्व को स्वतंत्र रूप से पहचानने की प्रक्रिया में दिखाई देती है। वह पारंपरिक भूमिकाओं और सामाजिक अपेक्षाओं पर प्रश्न उठाती है तथा अपने जीवन से जुड़े निर्णयों में स्वयं की भागीदारी चाहती है। शिक्षा और आर्थिक आत्मनिर्भरता उसके आत्मविश्वास को मजबूत करती हैं, किंतु उसके सामने सामाजिक और पारिवारिक नियंत्रण की अनेक स्थितियाँ बनी रहती हैं।

स्त्री पात्रों का संघर्ष केवल पुरुष के विरुद्ध संघर्ष नहीं है। वह उन सामाजिक मान्यताओं से भी संघर्ष करती है जो उसकी भूमिका और इच्छाओं को पहले से निर्धारित करती हैं। इसीलिए उसकी आत्मनिर्भरता का प्रश्न परिवार, विवाह और सामाजिक प्रतिष्ठा के प्रश्नों से जुड़ जाता है।

प्रेम, विवाह और दांपत्य संबंध

चयनित उपन्यासों में प्रेम और विवाह के बीच संबंधों की जटिलता दिखाई देती है। प्रेम व्यक्तिगत भावना और स्वतंत्र चुनाव का विषय बनता है, जबकि विवाह अभी भी पारिवारिक और सामाजिक संस्था के रूप में अपनी मजबूत उपस्थिति बनाए रखता है। इन दोनों के बीच उत्पन्न अंतर कई कथानकों में संघर्ष का आधार बनता है। दांपत्य संबंधों में भी समानता और संवाद की अपेक्षा बढ़ती दिखाई देती है। स्त्री पति से केवल आर्थिक सुरक्षा या सामाजिक संरक्षण नहीं, बल्कि भावनात्मक सम्मान और साझेदारी की अपेक्षा करती है। जब ये अपेक्षाएँ पूरी नहीं होतीं, तब संबंधों में मानसिक दूरी और असंतोष पैदा होता है। इस प्रकार दांपत्य जीवन निजी संबंध होने के साथ-साथ सामाजिक सत्ता-संबंधों का भी प्रतिबिंब बन जाता है।

पितृसत्ता और शक्ति-संबंध

चयनित उपन्यासों में पितृसत्तात्मक व्यवस्था विभिन्न स्तरों पर दिखाई देती है। परिवार में निर्णय लेने का अधिकार, स्त्री के व्यवहार पर नियंत्रण, विवाह संबंधी निर्णय और उसकी सामाजिक स्वतंत्रता जैसे प्रश्न इस व्यवस्था की प्रकृति को सामने लाते हैं।

महत्वपूर्ण बात यह है कि स्त्री पात्र केवल पीड़ित स्थिति में नहीं रहतीं। अनेक पात्र प्रश्न करती हैं, विरोध करती हैं और अपने लिए वैकल्पिक जीवन की संभावना तलाशती हैं। इस प्रक्रिया में उपन्यास स्त्री को सक्रिय सामाजिक व्यक्ति के रूप में स्थापित करते हैं। दूसरी ओर, पुरुष पात्रों के माध्यम से यह भी दिखाई देता है कि पारंपरिक सत्ता-संबंधों में परिवर्तन पुरुष की भूमिका और आत्मबोध को भी प्रभावित करता है।

परिवार और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का संघर्ष

चयनित उपन्यासों में व्यक्ति और परिवार के बीच संबंध अत्यंत जटिल हैं। व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता चाहता है, लेकिन परिवार से पूरी तरह अलग नहीं होना चाहता। विशेषतः स्त्री के लिए यह स्थिति अधिक कठिन है, क्योंकि उसके व्यक्तिगत निर्णयों का प्रभाव परिवार की प्रतिष्ठा और सामाजिक स्वीकृति से जोड़कर देखा जाता है।

विवाह, रोजगार, प्रेम, मातृत्व और जीवन-शैली से संबंधित व्यक्तिगत निर्णय कई बार पारिवारिक विरोध उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार परिवार व्यक्ति के लिए सुरक्षा और भावनात्मक संबंध का केंद्र भी है तथा कभी-कभी उसके स्वतंत्र निर्णयों पर नियंत्रण का माध्यम भी बन जाता है। यही द्वैत पारिवारिक अंतर्विरोध को अधिक जटिल बनाता है।

उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ और अंतर्विरोध

इन उपन्यासों का महत्व केवल स्त्री-पुरुष संबंधों के चित्रण में नहीं, बल्कि उन संबंधों के पीछे मौजूद सामाजिक यथार्थ को सामने लाने में भी है। आर्थिक असमानता, मध्यवर्गीय आकांक्षाएँ, सामाजिक प्रतिष्ठा, नगरीय जीवन और बदलते पारिवारिक मूल्य संबंधों की प्रकृति को प्रभावित करते हैं।

इस दृष्टि से अंतिम दशक का हिंदी उपन्यास परिवर्तन और निरंतरता दोनों को एक साथ प्रस्तुत करता है। एक ओर स्त्री की स्वतंत्रता और समानता की चेतना मजबूत होती है, दूसरी ओर पितृसत्तात्मक मूल्य और पारंपरिक सामाजिक मानदंड पूरी तरह समाप्त नहीं होते। इसी कारण पात्रों के जीवन में संघर्ष, समझौता, विरोध और पुनर्समायोजन की अनेक स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं।

समग्रतः चयनित हिंदी उपन्यासों का आलोचनात्मक अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में स्त्री-पुरुष संबंध एक संक्रमणशील सामाजिक संरचना का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन संबंधों में परंपरा और आधुनिकता, सामूहिकता और व्यक्तिवाद, सामाजिक मर्यादा और व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा पुरुष सत्ता और स्त्री अस्मिता के बीच निरंतर अंतःक्रिया दिखाई देती है। इस प्रकार इन उपन्यासों में निजी संबंध व्यापक सामाजिक परिवर्तन के दर्पण के रूप में सामने आते हैं और तत्कालीन भारतीय समाज के बदलते मूल्य-बोध तथा उसके अंतर्विरोधों को गहराई से अभिव्यक्त करते हैं।

7. निष्कर्ष

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि इस कालखंड में स्त्री-पुरुष संबंध भारतीय समाज में घटित व्यापक सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों से गहराई से प्रभावित हुए। उदारीकरण, वैश्वीकरण, नगरीकरण, शिक्षा के विस्तार और स्त्री की बढ़ती आर्थिक एवं सामाजिक सक्रियता ने पारंपरिक लैंगिक भूमिकाओं को प्रश्नांकित किया। परिणामस्वरूप प्रेम, विवाह, दांपत्य, परिवार और व्यक्तिगत स्वतंत्रता जैसी अवधारणाएँ नए संदर्भों में पुनर्परिभाषित होने लगीं।

इन उपन्यासों में स्त्री की स्थिति में आया परिवर्तन विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। स्त्री अब केवल परिवार-केंद्रित भूमिका तक सीमित नहीं रहती, बल्कि अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व, इच्छाओं, आकांक्षाओं और निर्णयों के प्रति सजग दिखाई देती है। उसकी आत्मचेतना पितृसत्तात्मक संरचनाओं और पारंपरिक सामाजिक मानदंडों के साथ संवाद तथा संघर्ष दोनों स्थापित करती है। इस प्रक्रिया में स्त्री की अस्मिता और आत्मनिर्णय का प्रश्न हिंदी उपन्यास के केंद्रीय सरोकारों में शामिल हो जाता है। दूसरी ओर, स्त्री की बदलती भूमिका ने पुरुष और परिवार की पारंपरिक संरचना को भी प्रभावित किया। पति-पत्नी के संबंधों में समानता, पारस्परिक सम्मान और भावनात्मक सहभागिता की अपेक्षा बढ़ी, लेकिन पारंपरिक सत्ता-संबंध पूरी तरह समाप्त नहीं हुए। इसी कारण दांपत्य जीवन में संवादहीनता, मानसिक दूरी, अपेक्षाओं का टकराव और अधिकार-बोध जैसी स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। उपन्यास इन स्थितियों को व्यक्तिगत समस्या के साथ-साथ व्यापक सामाजिक परिवर्तन के परिणाम के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

पारिवारिक अंतर्विरोधों के संदर्भ में भी इन रचनाओं में महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखाई देता है। संयुक्त परिवार की परंपरागत संरचना, नई पीढ़ी की स्वतंत्र आकांक्षाएँ, आर्थिक आत्मनिर्भरता और बदलती जीवन-शैली ने परिवार के भीतर नए प्रकार के तनाव पैदा किए। विशेषतः पीढ़ियों के बीच मूल्यगत अंतर ने विवाह, प्रेम, रोजगार, स्त्री की स्वतंत्रता और जीवन-निर्णयों से संबंधित प्रश्नों को अधिक जटिल बनाया। इस प्रकार परिवार सुरक्षा और भावनात्मक जुड़ाव का केंद्र होने के साथ-साथ व्यक्ति की स्वतंत्रता और सामाजिक नियंत्रण के बीच संघर्ष का क्षेत्र भी बन

गया। इन उपन्यासों का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि वे सामाजिक परिवर्तन को एकरेखीय प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत नहीं करते। आधुनिकता के साथ स्वतंत्रता और आत्मनिर्णय की संभावनाएँ बढ़ती हैं, किंतु परंपरागत मूल्य और पितृसत्तात्मक मानसिकता भी विभिन्न रूपों में विद्यमान रहती है। इसलिए स्त्री-पुरुष संबंधों में परिवर्तन संघर्ष, समझौते, असहमति, संवाद और पुनर्समायोजन की मिश्रित प्रक्रिया के रूप में सामने आता है।

अतः बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यास तत्कालीन भारतीय समाज में हो रहे मूल्यगत संक्रमण के महत्वपूर्ण साहित्यिक दस्तावेज हैं। इनमें स्त्री-पुरुष संबंधों के माध्यम से केवल निजी जीवन की समस्याओं को नहीं, बल्कि परिवार, सामाजिक नैतिकता, लैंगिक सत्ता, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और बदलती सामाजिक चेतना के व्यापक प्रश्नों को अभिव्यक्ति मिली है। इन रचनाओं की आलोचनात्मक दृष्टि यह संकेत करती है कि स्त्री-पुरुष संबंधों में परिवर्तन परिवार और समाज की संरचना से अलग कोई स्वतंत्र प्रक्रिया नहीं, बल्कि व्यापक सामाजिक परिवर्तन का अभिन्न हिस्सा है। इस दृष्टि से अंतिम दशक का हिंदी उपन्यास आधुनिक भारतीय समाज के अंतर्विरोधों, आकांक्षाओं और बदलते संबंध-बोध को समझने का महत्वपूर्ण माध्यम सिद्ध होता है। हाँ, संदर्भों में लेखक का नाम पहले नाम + उपनाम के क्रम में इस प्रकार रखा जा सकता है। साथ ही, जहाँ संभव है, शीर्षकों को मूल रूप में रखा गया है।

संदर्भ-सूची

1. मैनेजर पाण्डेय, अग्रवाल. (2009). *साहित्य और इतिहास-बोध*. वाणी प्रकाशन।
2. शशिकला, आचार्य. (2005). *हिंदी उपन्यास में स्त्री जीवन*. साहित्य संचय।
3. रामदरश, उपाध्याय. (2006). *हिंदी उपन्यास के सौ वर्ष*. राजकमल प्रकाशन।
4. ओमप्रकाश, वाल्मीकि. (2003). *दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र*. राधाकृष्ण प्रकाशन।
5. कात्यायनी. (2007). *दुर्ग द्वार पर दस्तक*. राजकमल प्रकाशन।
6. कृष्णा, सोबती. (1993). *ऐ लड़की*. राजकमल प्रकाशन।
7. सुरेश, गुप्त. (2004). *हिंदी उपन्यास : बदलते संदर्भ*. साहित्य भवन।
8. नंदकिशोर, चतुर्वेदी. (2008). *हिंदी उपन्यास और सामाजिक यथार्थ*. लोकभारती प्रकाशन।
9. चित्रा, मुद्गल. (1995). *आवां*. सामयिक प्रकाशन।
10. निर्मला, जैन. (2008). *हिंदी आलोचना : बीसवीं शताब्दी*. राजकमल प्रकाशन।
11. प्रभा, खेतान. (2004). *स्त्री उपेक्षिता*. हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय।
12. मैत्रेयी, पुष्पा. (1994). *इदन्नमम*. राजकमल प्रकाशन।
13. सुधा, पांडेय. (2006). *हिंदी उपन्यास में स्त्री विमर्श*. वाणी प्रकाशन।
14. राजी, सेठ. (1999). *तत्-सम*. भारतीय ज्ञानपीठ।
15. राजेंद्र, यादव. (2007). *कहानी : स्वरूप और संवेदना*. अक्षर प्रकाशन।
16. रामविलास, शर्मा. (2001). *हिंदी साहित्य की भूमिका*. राजकमल प्रकाशन।
17. नामवर, सिंह. (2005). *कविता के नए प्रतिमान*. राजकमल प्रकाशन।
18. प्रभा, स्त्रीवादी. (2010). *स्त्री विमर्श और हिंदी साहित्य*. वाणी प्रकाशन।
19. अलका, सेठ. (1998). *कालिकथा : वाया बाइपास*. भारतीय ज्ञानपीठ।
20. सविता, सिंह. (2000). *स्त्री अस्मिता और हिंदी साहित्य*. राजकमल प्रकाशन।